BAOU Education for All | Dr. Babasaheb Ambedkar Open University (Established by Government of Gujarat)
NAAC ACCREDITED A++ GRADE 3.55/4 | 3rd Rank nirf 2024
A Refereed and Peer-Reviewed International e-Journal of Humanities and Social Sciences
Website: http://jyotirmay.baou.edu.in/chaitanya/ Email: chaitanya.ejournal@baou.edu.in
चैतन्य CHAITANYA ISSN: 2582 2802
Year–06, Volume –06, Issue–03, September–2025

भारतीय संस्कृति और राष्ट्रभक्ति का स्वर : मैथिलीशरण गुप्त

– डॉ. आशीष कुमार सिंह

सारांश:

भारतीय काव्य परंपरा की संस्कृति में यथेष्ट कवि हुए हैं, जिन्होंने कविता को केवल मनोहारिता की भावाभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे तत्कालीन समय, समाज और राष्ट्र की सुषुप्त चेतना को जागृत करने का माध्यम बनाया। इन्हीं में से एक प्रमुख नाम है- 'मैथिलीशरण गुप्त'। उनके काव्य में जहाँ भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की गहरी छाप दिखाई देती है, वहीं राष्ट्र प्रेम का ओजस्वी स्वर भी सुनाई देता है। यही कारण है कि उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से सम्मानित किया गया। स्वतंत्रता संग्राम के समय गुप्त जी की रचनाएँ जनमानस में ऊर्जा, जागरण, स्फुर्ति और आत्मबल का संचार करती रहीं। बीसवीं शताब्दी का उत्तर भारत, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना के लिए सबसे अधिक यदि किसी एक व्यक्ति का ऋणी है तो वह मैथिलीशरण गुप्त हैं। बीसवीं शताब्दी को राजनीतिक चेतना का आदर्श युग माना जाता है। भारतवर्ष में महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय आन्दोलन ने जिस व्यापकता के साथ राजनीतिक चेतना को उद्घाटित किया है ठीक वैसा ही साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना का उद्घाटन मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-कृतियों के माध्यम से हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलनों की वैचारिकी को परिपुष्ट करने वाले कवियों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुब्रह्मण्य भारती और मैथिलीशरण गुप्त की चर्चा मुख्य रूप से की जाती है।

बीज शब्द: भारतीय सांस्कृतिक मूल्य, बीसवीं शताब्दी, लोकमंगल, 'स्व', अर्वाचीन, विश्व कल्याण।

प्रस्तावना

मैथिलीशरण गुप्त के संपूर्ण कृतित्व का मूल स्वर ही भारतीय संस्कृति रहा है। एक आदर्श कवि के रूप में गुप्त जी ने सबसे पहले अपने युग और युगधर्म को पहचाना। उन्होंने भारतीय संस्कृति के यथार्थपरक गौरव-गान से जन-मानस को अपने 'स्व' के प्रति सोचने पर मजबूर कर दिया। गुप्त जी का काव्य कोरे कल्पना तथा रहस्य से हटकर ठोस धरातल पर स्थित अनुभवजनीत था। उन्होंने अपने देशवासियों में सांस्कृतिक चेतना को विकसित करना आवश्यक समझा। उनकी कला की सार्थकता कदाचित सांस्कृतिक आदर्शों की अभिव्यक्ति में ही निहित रही है। स्वयं कवि के शब्दों में- "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला है।"[1] निश्चित

ही गुप्त जी की कला भारतीय संस्कृति से ही अनुप्राणित है। भारतीय संस्कृति और भारतीय कलाओं का संबंध मोम और बाती के समान है। इस संदर्भ में कवि का कथन उल्लेखनीय है- "संस्कृति जनती कला, कला संस्कृति जनती है, सरस उसी से रामराज्य की विधि बनती है।"[2]

रामराज्य में भारतीय संस्कृति उत्कर्ष के चरम शिखर पर विराजमान थी। राम का मर्यादापालन और उनका पवित्र चरित्र भारतवर्ष के लिए सर्वोच्च आदर्श के रूप में ग्रहण किया जाता है। भारतीय संस्कृति के विकास में धर्मशास्त्रों, दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों, साहित्यकारों, कलाकारों और शिल्पाचार्यों का भी योगदान चिरस्मरणीय है। निःसन्देह भारतीय संस्कृति का मूल स्वर अध्यात्म, मानवीय करुणा, त्याग और लोकमंगल की भावना पर आधारित है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में इन मूल्यों को सजीव अभिव्यक्ति प्रदान की। उनकी कृति *'भारत-भारती'* में प्राचीन भारत की उस गौरवपूर्ण परंपरा का स्मरण मिलता है, जहाँ ज्ञान, विज्ञान, कला और धर्म का अनुपम समन्वय विद्यमान था। गुप्त जी के अनुसार, संस्कृति का आशय केवल अतीत की स्मृतियों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके वास्तविक महत्व का बोध तब होता है जब वह वर्तमान जीवन में नैतिक आदर्शों और मानवीय मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित होती है। इन्हीं सांस्कृतिक आदर्शों का उन्नयन और आधान ही मैथिलीशरण गुप्त की साहित्य-साधना का प्रमुख लक्ष्य रहा है, जो एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण और पवित्र कार्य है। आज के युग में सांस्कृतिक धारा को पल्लवित और पोषित रखने में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है।

आधुनिक काल के भारतीय नवजागरण ने सांस्कृतिक कविता को भीतर से आन्दोलित किया है। आज भारतीय संस्कृति और भारतीय इतिहास पर समग्र दृष्टि डालने से यह तथ्य प्राप्त हो जाता है कि हमारा नवजागरण हमारी अपनी परिस्थितियों से ही जुड़ा हुआ है। ऐसी स्थिति में आधुनिक भारतीय नवजागरण एशिया के साथ-साथ अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के विश्व-जागरण से जुड़ा हुआ दिखाई देने लगता है। यह सच है कि भारत के आधुनिक सांस्कृतिकीकरण, राजनीतिकीकरण, आर्थिकीकरण, सामाजिकीकरण के नये दौर ने एक नवीन जीवन दृष्टि को जन्म दिया और यह जीवन-दृष्टि मध्ययुगीन मूल्यों और जीवन-दृष्टियों से सर्वथा भिन्न रही हैं।

संस्कृति हमेशा से मुनष्य के आन्तरिक दृष्टिकोण, चिन्तन धारा और विचारों से संबंधित रही है। संस्कृति एक सूक्ष्म और अदृश्य चेतना है जो सभ्यता को आधार प्रदान करती है। संस्कृति शब्द पाश्चात्य देशों में प्रयुक्त 'कल्चर' शब्द का समानार्थी है। नृतत्वशास्त्र एवं समाजशास्त्र के अनुसार – "मनुष्य जो कुछ करता है उसे सभ्यता और जो सोचता है उसे संस्कृति कहना चाहिए।"[3] सामान्यतः मनुष्य जो कुछ सोचता है उसी के अनुसार वह अपना कार्य भी करता है। यदि किसी भी व्यक्ति की संस्कृति उसे अच्छा ज्ञान देती है तो वह उसी के अनुरूप अपने कार्यों को भी करता है।

किसी भी संस्कृति की अभिव्यक्ति-सामाजिक जीवन, विधि, धर्म, नीति दर्शन, संगीत, चित्रकला, मूर्ति-कला, स्थापत्य कला, आध्यात्मिक साधना, सत्यान्वेषण, मानवतावाद के साथ ही साथ साहित्य में विशेष रूप से होती है। अभिव्यक्ति के ये सभी प्रकार मनुष्य की जिस दृष्टि, चिन्तन और विचारधारा के परिणाम होते हैं तथा उनकी जो फलश्रुति होती है उन सबका सम्मिलित नाम ही संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति का ही एक अंग है, किन्तु विश्व की विभिन्न प्राचीन संस्कृतियों में एकात्मकता के साथ-साथ पर्याप्त अन्तर भी है, क्योंकि किसी संस्कृति में एक मूलतत्व की प्रधानता होती है तो दूसरी में दूसरे मूलतत्व की। किन्तु भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि उसमें संस्कृति के सभी मूलतत्व पूर्णरूप से विद्यमान है। मैथिलीशरण गुप्त को अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति की महत्ता पर गर्व तो वर्तमान सांस्कृतिक गिरावट पर अत्यन्त चिन्ता थी। यह चिन्ता उनकी सांस्कृतिक चेतना का ही परिणाम है। इस सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति व्यावहारिक रूप में आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि विभिन्न संस्थाओं की स्थापना, गुरुकुलों, पाठशालाओं और विद्यालयों की स्थापना, पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि के रूप में होती रही और वैचारिक अभिव्यक्ति काव्यों, साहित्यों आदि के माध्यम से होती थी। मैथिलीशरण गुप्त ने सांस्कृतिक पुनर्जागरण को जन-जन तक प्रसारित करने के लिए काव्य रचना का मार्ग अपनाया था। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य स्वदेश संगीत, मंगलघट और भारत-भारती में एक ओर तो प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है, तो दूसरी ओर सांस्कृतिक ह्रास का मार्मिक चित्रण करते हुए जनता को अपनी दशा सुधारने और संस्कृति की रक्षा करने का भी संदेश दिया गया है। इस सन्दर्भ में 'भारत-भारती' के 'अतीत खण्ड' में कवि ने लिखा है- "हाँ, वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिर मौर है, ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है? भगवान की भव-भूतियों का यह प्रथम भण्डार है? विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है।"[4] इससे स्पष्ट है कि मैथिलीशरण गुप्त प्राचीन भारत को सांस्कृतिक और भौतिक उत्कर्ष के लिये गर्व का अनुभव करते हैं और वर्तमान भारत की संस्कृति और सभ्यता के ह्रास के लिये अपना क्षोभव्यक्त करते हैं।

गुप्त जी का यह मत है कि प्राचीन काल में हमारी संस्कृति इतनी उन्नत थी कि सारे विश्व के लोग भारतीयों का शिष्यत्व ग्रहण करते थे। यूनान, चीन, जापान आदि देशों ने भारत से ही ज्ञान का प्रकाश प्राप्त किया था- "यूनान ही कह कि वह ज्ञानी-गुणी कब था हुआ? कहना न होगा, हिन्दुओं का शिष्य वह जब था हुआ। हमसे अलौकिक ज्ञान का आलोक यदि पाता नहीं, तो वह अरब यूरोप का शिक्षक कहा जाता नहीं।।"[5]

मैथिलीशरण गुप्त अपने काव्य 'भारत-भारती' में बिना किसी लागलपेट के सीधे-साधे लेकिन सधे शब्दों में कहते हैं कि प्राचीन भारत एक आदर्श राज्य था जिसमें नैतिकता थी, न्याय था, धर्म था, दर्शन था, अध्यात्म था, वेद, उपनिषद, महापुराण था। विविध दर्शनों का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं- "विख्यात चारों वेद मानो चार सुख के सार हैं, चारों दिशाओं के

हमारे वे जय-ध्वज चार हैं। वे ज्ञान गरिमागार हैं, विज्ञान के भण्डार हैं, वे पुण्य के पारावार हैं, आचार के आधार हैं।।"[6] उपनिषदों के बारे में मैथिलीशरण गुप्त का विचार है कि, जो जीवित रहने पर और मृत्यु के बाद भी शान्ति दे ऐसी अद्वितीय अनुपम सम्पदा है हमारी उपनिषद। इहलोक से परलोक तक को पवित्र और उत्कृष्ट बनाने की क्षमता यदि किसी में है तो वह उपनिषद ही है जिसकी चर्चा समस्त संसार में फैली हुई है- "जो मृत्यु के उपरान्त भी सबके लिए शान्तिप्रदा-है उपनिषद्विद्या हमारी एक अनुपम सम्पदा। इस लोक को परलोक से करती वही एकत्र है, हम क्या कहें, उसकी प्रतिष्ठा हो रही सर्वत्र है।।"[7]

मैथिलीशरण गुप्त ने वेद, पुराण, उपनिषद्, सूत्र-ग्रंथ, गीता और दर्शन आदि पर आधारित काव्य की रचना की है। वे अपने सरल, सहज और सुगम्य काव्य योजना के माध्यम से समाज को जागृत करना चाहते थे। समाज की उस समय की स्थिति को देखकर गुप्त जी उसे बार-बार प्रबुद्ध करते और नई दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। साथ ही वे आग्रह करते हैं कि प्रगति की राह में हमें प्राचीन परंपराओं की ओर आलोचनात्मक दृष्टि से देखना चाहिए। गुप्त जी का स्पष्ट कथन है कि दर्शन के क्षेत्र में हमसे आगे कौन था? यूनान, यूरोप और अरब— सभी ने हमारे ऋषियों गौतम, कपिल, जैमिन, पतंजलि, व्यास और कणाद से ही तो दार्शनिक संवाद करना सीखा है- "उस दिव्य दर्शनशास्त्र में है कौन हमसे अग्रणी? यूनान, यूरोप, अरब आदि हैं हमारे ही ऋणी। पाये प्रथम जिनसे जगत् ने दार्शनिक संवाद हैं-गौतम, कपिल, जैमिन, पतंजलि, व्यास और कणाद हैं।।"[8]

'श्रीमद्भगवद्गीता' को विश्व की सबसे प्राचीन जीवित संस्कृति, भारत की महान धार्मिक सभ्यता का एक प्रमुख साहित्यिक प्रमाण माना जा सकता है। गीता के गहन प्रभाव से प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं कि इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि अंधकार में भटके हुए लोगों के लिए गीता प्रकाशस्तंभ के समान है। वे गीता की प्रभावशक्ति को दर्शाते हुए कहते हैं – "यह क्या हुआ कि अभी अभी तो रो रहे थे ताप से, हैं और अब हँसने लगे वे आप अपने आप से। ऐं क्या कहा, निज चेतना पर आ गई उनको हँसी, गीता-श्रवण के पूर्व थी जो मोह माया में फँसी।"[9]

मैथिलीशरण गुप्त को इस बात का गर्व है कि एक समय भारत में अध्यात्म और दर्शन विद्या अपने चरमोत्कर्ष पर थी। वेदों, सूत्र ग्रन्थों, उपनिषदों और विविध दर्शनों का निर्माण होने से भारत का अतीत निश्चित रूप से गौरवपूर्ण था और शायद इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त यहाँ के आदर्श महापुरुषों के चरित्रों से प्रभावित होते हैं। वे गौतम, मनु, याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि, व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि महर्षियों, पृथु, भरत, पुरू, रघु जैसे लोककल्याणकारी राजाओं लोपामुद्रा, अपाला, गार्गी जैसी विदुषियों रन्तिदेव, हरिश्चन्द्र, दधीचि, शिवि, प्रहलाद जैसे भक्तों, भीष्म, अभिमन्यु, अर्जुन जैसे वीरों को याद करते हुए दुःख व्यक्त करते हैं कि अब इस प्रकार के उच्च आदर्शों वाले महान उदात्त चरित्रों वाले व्यक्ति क्यों नहीं उत्पन्न होते।

फिर भी इस विवेचन से यह नहीं समझना चाहिए कि मैथिलीशरण गुप्त अतीत के अन्ध प्रशंसक थे। वस्तुतः किसी भी सभ्यता को अपना अतीत भूलना नहीं चाहिए। अतीत का ज्ञान हुए बिना न तो आप वर्तमान स्थिति का पता लगा सकते हैं और न ही भविष्य के लिए किसी मार्ग का निर्धारण ही कर सकते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा की तुलना में उन्हें तात्कालीन सांस्कृतिक परिस्थिति नितान्त पतनशील एवं विद्रुपताओं से भरी हुई दिखायी देती है। शायद इसीलिए 'भारत-भारती' में भारतीय संस्कृति के प्रति भारतीयों की चेतना का झकझोरने के बाद भी उन्हें कुछ कमी लगती है। इस कमी को दूर करने के लिए 'हिंदू' नामक निबंध काव्य में हिन्दू जनता की सांस्कृतिक स्थिति के संबंध में अपने विचार फिर से व्यक्त किये हैं। इस काव्य ग्रन्थ में हिन्दू धर्मावलम्बियों को संगठित होकर भारत के वर्तमान अपकर्ष पर आत्म-मंथन करने तथा आत्म-उत्थान करने के लिए उद्बोधित किया है-

"तनिक विचारों न हो विरक्त, तुममें भी है हिन्दूरक्त।
यदि तुम भूलो न यह विवेक, तो हम तुम हैं कितने एक।।
डालो अपने ऊपर दृष्टि, तुम अधिकांश यही की सृष्टि।
तुम हिन्दू हो धार-विधर्म, भूल गये हो निज कुलकर्म।।
करो पूर्व संस्कृति की याद, मिटे सभी विद्वेष विषाद।
तुम अभिन्न हो, न हो विभिन्न, रहो न हम अपनों से खिन्न।।"[10]

मनोरंजन को उन्होंने कभी कवि कर्म नहीं समझा। वे जानते थे कि भारत के पुनर्निर्माण की आधारशिला ठोस होनी चाहिए। जिस समय मैथिलीशरण गुप्त का हिन्दी काव्यजगत में अवतरण हुआ, उस समय की आधारशिला रेतीली सतह पर टिकी हुई थी। इस राष्ट्र को इस समय विश्वास, साहस, उत्साह और आशा की आवश्यकता थी। फलतः उनके काव्य में हम एक सशक्त आधारशिला की नींव को पाते हैं। इस सशक्त आधारशिला का आधार उन्होंने प्राचीन संस्कृति को ही माना है। प्राचीन समृद्धि का अर्जन हमारे शील, आचार-व्यवहार पर ही निर्भर है। भारत इस शील सदाचार के निर्वाह में अग्रणी रहा है। इस पुरातन हिन्दू संस्कृति में भोग और योग दोनों का समन्वय मिलता है। हमारे ऋषियों, ऐतिहासिक महापुरुषों आदि ने सदैव इसी शील रक्षा अथवा शील समृद्धि को ध्यान में रखकर समाज के सम्मुख उपदेश दिया है। मर्यादा, शील, त्याग, तप, पुरुषार्थ आदि गुणों से परिपूर्ण पात्रों का सृजन मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्यों में खूब-खूब किया है।

वस्तुतः गुप्त जी का काव्य और उनमें आए हुए पात्र भारत की प्राचीन संस्कृति, प्राचीन धर्मनीति और राष्ट्र की गौरवपूर्ण गाथा से ओतप्रोत हैं। उन्हें राष्ट्र का मस्तक ऊँचा उठाने वाले व्यक्तियों और विषयों की खोज रहती है। अपने युग को हीन समझने वाले लोगों को फटकार लगाते हुए वे कहते हैं कि उठो, जागो अपने आप को पहचानो और भारत के पुनर्निर्माण में अपना सहयोग दो- "अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी। सजग रहो, इससे दुर्बलता

और दीनता होगी। जिस युग में हम हुए, वही तो अपने लिए बड़ा है, अहा! हमारे आगे कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है।"[11]

गुप्त जी निष्ठावान व्यक्ति थे। उन्होंने हिन्दू धर्म और राष्ट्र धर्म दोनों को एक साथ साधा है। पाँच हजार प्राचीन सभ्यता में आयी बारह सौ वर्षों की खामियों से जो हिन्दू धर्म का अपकर्ष हुआ है उससे मुक्त होने के लिए मैथिलीशरण गुप्त का आह्वान अत्यन्त महत्वपूर्ण है- "हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी, आओ, विचारें बैठकर के ये समस्यायें सभी।"[12]

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य में भारतीय संस्कृति की प्राचीन और अर्वाचीन परम्पराओं, मान्यताओं का सुन्दर, सजीव समन्वय हुआ है। यह समन्वयशीलता ही भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व है। भारतीय संस्कृति की इस उदात्तकारी, समन्वयकारी प्राण तत्व में गुप्त जी की गहरी आस्था है; और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि सभी देशों की संस्कृतियाँ एक बार फिर से भारतीय संस्कृति के आलोक से आलोकित होंगी। स्वयं कवि के ही शब्दों में विश्व कल्याण एवं आत्म गौरव की आशा अभिव्यक्त है- "आर्य-भूमि अन्त में रहेगी आर्य-भूमि ही; आकर मिलेंगी यहीं संस्कृतियाँ सब की; होगा एक विश्व-तीर्थ भारत ही भूमि का।"[13]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मैथिलीशरण गुप्त का काव्य भारतीय संस्कृति की जीवनदृष्टि को सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। उनकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम का स्वर गहराई और प्रखरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। गुप्त जी अपने साहित्य के माध्यम से यह उद्घोष करते हैं कि भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों और परंपरागत मूल्यों को आधार बनाकर ही एक जागरूक, सशक्त और उन्नत राष्ट्र की परिकल्पना साकार हो सकती है।

संदर्भ -

1. डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, श्री मैथिलीशरण गुप्त (डॉ. वेदज्ञ आर्य, मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि), सेतु प्रकाशन, झाँसी, प्रथम संस्करण, 1975, पृ.सं. 57
2 वही, पृ.सं. 57
3. डॉ. जनार्दन पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, संस्करण 1985, पृ.सं. 3
4. वही, पृ.सं. 71
5. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, अतीत खण्ड, छन्द संख्या 66, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011, पृ.सं. 32
6. वही, छन्द संख्या-86, पृ.सं. 41
7. वही, छन्द संख्या-87, पृ.सं. 41
8. वही, छन्द संख्या-89, पृ.सं. 42
9. वही, छन्द संख्या-91, पृ.सं. 43

10. डॉ. जनार्दन पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, संस्करण 1985, पृ.सं. 75-76
11. डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित, मैथिलीशरण गुप्त (डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, गुप्तजी के काव्य में सांस्कृतिक चेतना और नवोम्मेष) स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1972, पृ.सं. 86
12. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, अतीत खण्ड, छन्द संख्या-14, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011, पृ.सं. 14
13. डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, श्री मैथिलीशरण गुप्त (डॉ. वेदज्ञ आर्य, मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि), सेतु प्रकाशन, झाँसी, प्रथम संस्करण, 1975, पृ.सं. 82

डॉ. आशीष कुमार सिंह, सहायक प्राध्यापक – हिंदी, स्कूल ऑफ़ ह्यूमनिटीज़ एंड सोशल साइंसेज,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ओपन यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद, गुजरात।
ईमेल आईडी- ashishsinghsagar100@gmail.com